*Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education*
*Vol. 17, Issue No. 2, October-2020, ISSN 2230-7540*

# मुंशी प्रेमचंद की कथा साहित्य में आधुनिक दलित विमर्श का अध्ययन

**Meenakshi[1]*, Dr. Navita Rani[2]**

[1] Research Scholar, Sunrise University, Alwar, Rajasthan

[2] Associate Professor, Sunrise University, Alwar, Rajasthan

***सार - प्रेमचंद की रचनाओं में दलित विमर्श के संदर्भ में मूल्यांकन करने से पूर्व उस दौर ( 1920-1936) की दलित समस्याओं पर राजनीतिज्ञों की सोच, सामाजिक मान्यताओं, दृष्टिकोण, विद्वानों, लेखकों की धारणाओं, विचारों आदि को जानना अत्यंत आवश्यक है। इसी दौर में स्वतंत्रता अंादोलन , नवजागरण, आर्य समाज, ब्रहमसमाज, कांग्रेसी विचारधारा, हिन्दू महासभा, गांधीजी, डा. भीमराव अंबेडकर आदि के अंादोलन अपने शिखर पर थे। प्रेमचंद का रचनाकर्म इसी दौर का है। डा. अंबेडकर ने दलितों की मूक वाणी को आवाज प्रदान की। दूसरी ओर गांधीजी ने भी अछूतोद्धार की घोषणा की। सन् 1931 की गोलमेज़ कार्फरस में डा अंबेडकर ने दलितों के लिए पृथक निर्वाचन की मांग की तो गांधीजी ने उसका विरोध किया। 17 अगस्त 1932 को रैमजे मैकडानल्ड ने अपना निर्णय दिया, जिसमें न केवल मुसलमानों के लिए पृथक चुनाव क्षेत्रों तथा अन्य सुरक्षाओं का समर्थन किया, बल्कि दलितों को एक ईकाई के रूप में मान्यता दी गई थी।***

***मुख्यशब्द -हिंदी साहित्य ,प्रेमचंद,दलित विमर्श, प्रेमचंद की रचनायें, दलित समस्यायें, सामाजिक मान्यतायें***

---------------------------------X---------------------------------

**प्रस्तावना**

कोई भी साहित्यकार युगीन परिस्थितियों से निश्चित रूप से प्रभावित होता है, लेकिन उसके व्यक्तिगत जीवन की घटनाएं भी उसके साहित्य पर अनजाने में ही अपनी प्रतिच्छाया डालती है। प्रेमचंद साहित्य भी इस तथ्य का अपवाद नहीं है। प्रेमचंद का जीवन काफी संघर्षमय परिस्थितियों में गुजरा। इन्हीं परिस्थितियों ने उनके जीवन को घटना संकुल बना दिया, जिससे उन्हें जीवन में संघर्ष करने का अदम्य साहस प्राप्त हुआ।

प्रेमचंद की अधिकांश कहानियों में दलित की समस्याओं को ग्रामीण जनता की आम समस्याओं का एक अंग बनाकर ही चित्रित किया गया है। प्रेमचंद की विशेषता यह है कि ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति निरंतर संघर्ष करते हुए भी उन्होंने देश के अन्य वर्गों के बीच मौजूद अन्तर्विरोधों को नजर से ओझल नहीं होने दिया। ग्रामीण समाज का चित्रण करते हुए उन्होंने अपनी कहानियों का केन्द्रीय मुद्दा वहां के शोषित-पीड़ित जन के उस आर्थिक शोषण और सामाजिक उत्पीड़न को बनाया।

प्रेमचंद की विशेषता यह है कि वह वर्ग के आर्थिक शोषण के पक्ष को कभी अपनी नजर से ओझल नहीं होने देते। आखिर इस शोषण को बरकरार करने के लिए ही जो जात-पात, धर्म-अधर्म और ऊँच-नीच का तामझाम तैयार किया है।

प्रेमचंद नेएक अछूत जाति के पात्र को नायक बनाकर क्रांतिकारी कार्य किया , सूरदास में गांधी की छविउतारकर और भी बड़ा काम किया और धर्म-न्याय-सत्य की लड़ाई लड़ने के कारण उसे भारत केवीर-त्यागी महापुरुषों की परंपरा से जोड़ दिया। वह अंधा है , भिखारी है, पर उसकी अंतर्दृष्टि प्रबलहै। उपन्यास के सभी सवर्ण पात्रा-राजा-महाराजा , शासक, उद्योगपति आदि सभी उसके सम्मुख श्रद्धासे झुकते हैं तथा उसकी श्रेष्ठता को स्वीकार करते हैं। उपन्यास के अंत में उसका बलिदान गांधी के बलिदान से कम नहीं है। अतः

'रंगभूमि' तो दलित जाति के नायक को गांधी का प्रतीकबनाकर उसे समाज के शिखर पर स्थापित करती है , न कि किसी जाति का अपमान करती है।सूरदास प्रेमचंद की महान एवं कालजयी सृष्टि है और दलित जाति के लिए तो वह गौरव का केंद्रहै। इसी प्रकार 'गोदान' में मातादीन-सिलिया के प्रसंग में दलितों द्वारा ब्राह्मण मातादीन के मुंह मेंहड्डी डालने का प्रसंग एक बार फिर प्रेमचंद के दलित-दर्शन के क्रांतिकारी रूप को उद्घाटित करताहै।

गांधीजी दलितों को हिन्दू धर्म से अलग नहीं करना चाहते थे, वे चाहते थे कि उनके साथ अमानुषी व्यवहार न हो पर उन्हें पृथक करके उन्हें हिन्दू से अलग नहीं करना चाहते थे। इसी के विरोध में गांधीजी ने यरवदा जेल में 20 सितम्बर 1932 को आमरण अनशन शुरू किया। गांधीजी की हालत बिगड़ने लगी डा. अंबेडकर पीछे हटे एवं हिन्दू नेताओं के बीच समझौता हुआ जिसे 'पूना एक्ट' कहा जाता है। जिसके तहत दलितों को सामान्य चुनाव क्षेत्र के अंग , विधान सभाओं में अधिक सीटें , एवं हिन्दू सीटों के कोटे से अपने लिए आरक्षित सीटों के लिए निर्वाचन मंडलों द्वारा सदस्य चुन सकते हैं। प्रेमचंद गांधीवादी थे, उन्होंने अपने लेखों के द्वारा गांधीजी को न केवल सहयोग दिया पर अंग्रेजों की नीति पर कटाक्ष भी किया। "डा. अंबेडकर की पृथक निर्वाचन की मांग पर 22 अगस्त 1932 जागरण में उनकी संपादकीय टिप्पणी में लिखा है कि "सांप्रदायिक भेद की नीति ही आपत्तिजनक है, गवर्नमेंट भारत को राष्ट्र नहीं समझती है , हम अपने व्यवहार में ऐसा समझने का अवसर ही नहीं देते हैं। वह तो भारत को सम्प्रदायों की दृष्टि से देखती है। अतैव साम्प्रदायिक मताधिकार के लिए हम इतने इच्छुक हों, यह तो गवर्नमेंट की दृष्टि का समर्थन है।"

संकीर्ण अर्थ में तो अछूतों में भंगी , चमार आदि वही जातियाँ आती हैं, जिनके सदस्यों को मंदिर और धार्मिक स्थानों आदि में जाने देने की अनुमति की तो बात ही क्या उन्हें हाथ लगाना और उनका छुआ पानी पीना भी वर्जित है और यदि उच्च जातियों के लोगों से ऐसा पाप हो जाय तो हिन्दू धर्म में उसके प्रायश्चित का विधान है। व्यापक अर्थ में इन जातियों में वे लोग भी शामिल हो जाते हैं, जिन्हें आजकल 'पिछड़ी जातियों' से संबंधित माना जाता है। जैसे धोबी , पासी, गड़रिया, कुरमी, अहीर आदि। शायद उसकी वजह यह हो कि पारिभाषिक अर्थ में अछूत न होते हुए भी और खुद को उनसे ऊँचा मानते हुए भी इन जातियों के सदस्य ज्यादातर या तो छोटे किसान है या फिर खेत मजदूरी करतें हैं और गाँव की श्रेणी सारणी में इनका स्थान काफी नीचे होता है। प्रेमचंद ने भीलों, कंजरों और अन्य उपेक्षित जन जातियों को भी इसी वर्ग में शामिल कर लिया है। शायद इस व्यापक दृष्टिकोण के कारण ही प्रेमचंद अपनी कहानियों में अक्सर पात्रों की जातियों का उल्लेख तक नहीं करते। ऐसे में अनेक रीति-रिवाज या आचार-व्यवहार से ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उनका संबंध तथाकथित-दलित ' या निम्न जातियों से है।"

कोई भी साहित्यकार युगीन परिस्थितियों से निश्चित रूप से प्रभावित होता है , लेकिन उसके व्यक्तिगत जीवन की घटनाएं भी उसके साहित्य पर अनजाने में ही अपनी प्रतिच्छाया डालती है। प्रेमचंद साहित्य भी इस तथ्य का अपवाद नहीं है। प्रेमचंद का जीवन काफी संघर्षमय परिस्थितियों में गुजरा। इन्हीं परिस्थितियों ने उनके जीवन को घटना संकुल बना दिया , जिससे उन्हें जीवन में संघर्ष करने का अदम्य साहस प्राप्त हुआ।

किसी भी कलाकार की कृतियों को अथवा साहित्य की रचनाओं को पढ़ने से पूर्व हम यह ज्ञात करना चाहते हैं कि उस कलाकार अथवा साहित्यकार की रचनाएं किस प्रकार की होंगी या उसने समाज के कौन से पहलू को छेड़ा होगा तो उस कलाकार के घर के बारे में , उसके जीवन के बारे में और किस वातावरण में रहकर उसने साहित्य रचना की होगी, इन सब बातों का अनुमान हमें उसकी रचना को पढ़ने से पहले ही लगा लेना चाहिए। क्योंकि कोई भी कलाकार , साहित्यकार अथवा चित्रकार अपनी कृतियों में , रचनाओं में और चित्रों में अपना व्यक्तित्व लाये बिना नहीं रह सकता। जब कोई सफल कलाकार अपनी कृतियों में यथार्थ का चित्रण लाये बिना नहीं रह सकता या यूं कह सकते हैं कि अपने आस-पास के वातावरण से प्रभावित होकर मानव-जीवन के बहुत समीप नहीं जाता। तब तक वह सफल कलाकार नहीं बन सकता।

प्रेमचंद ने किसानों को भी दलितों के अन्तर्गत रखा है। जिस पर डा. रामवृक्ष कहते हैं कि-- "ब्राह्मण भारतीय किसान का परम्परागत शोषक है। सैकड़ों वर्षों से भारतीय समाज में ऐसी परंपराएं चल रहीं हैं , जिसके कारण ब्राह्मण का शोषण वैद्य बन गया है। किसान इस शोषण को नहीं समझता और न पंडितजी इसे शोषण समझतें हैं। प्रेमचंद ने इस परम्परागत शोषण को शोषण के रूप में दिखाया है। पंडे-पुजारियों का यह शोषण 'दान' के रूप में होता है। इसमें देने वाला लेने

वाले पर कोई उपकार नहीं करता , बल्कि उल्टे लेने वाला दान लेकर देने वाले पर उपकार करता है।"

प्रेमचंद का घर अथवा परिवार बहुत ऊँचा या सम्पन्न नहीं था। वे निर्धन परिवार से संबंधित थे और जैसा उन्होंने स्वयं कहा है:

'मेरा जीवन सपाट , समतल मैदान है , जिसमें कहीं-कहीं गड्ढे तो हैं , पर टीलों, पर्वतों, घने जंगलों, गहरी घाटियों और खड्डों को स्थान नहीं है। जो सज्जन पहाड़ों की सैर के शौकीन हैं उन्हें तो निराशाहोगी।'

**आधुनिक हिंदी-दलित विमर्श**

भारतीय समाज में व्याप्त वर्ण-व्यवस्था, जाति, अस्पृश्यता शोषण, दमन, उत्पीडन के खिलाफ संघर्ष की लंबी प्रक्रिया रही है। हिंदू व्यवस्था की अमानवीयता का परिणाम इतना भयानक है कि आज भी भारतीय समाज हजारों जातियों में बंटा हुआ है। जातिगत भेदभाव आज भी उसी प्रकार जडें जमाए हुए हैं, जैसा कि हजारों वर्षों पहले था। दलित विमर्ष इस जड़ को उखाड़ फेंकने के लिए कृतसंकल्प है। ओमप्रकाश वाल्मीकि के शब्दों में, भारतीय समाज में वर्ण-व्यवस्था के आधार पर जो बंटवारा हुआ, उसकी ही देन है जातिभेद।

उल्लेखनीय है कि वर्णाश्रम-व्यवस्था पुनर्जन्म ओर कर्मफल के तर्क पर आधारित है। इसके तर्कों के अनुसार जाति स्वयं भगवान का करिश्मा है। दलितों के लिए सवर्णों की सेवा करना आवश्यक बना दिया गया और यही उनकी मुक्ति का मार्ग था। या इसे उनकी गुलामी का मार्ग भी बताया जा सकता है। परन्तु वर्ण-व्यवस्था क पक्षधर ये मानने को तैयार ही नहीं है कि विकास को रोक देने वाली यह व्यवस्था प्रगति पथ को सीमित कर देती है और समाज को संकीर्णता में बांॅध देती है।"

हिदू समाज की सारी मान्यताओं को यदि देखा जाए तो वह हिंदू समाज के विरोध में ही खड़ी नजर आती है। समाज में ऐसे अनेक प्रचलित मुहावरे , लोकोक्तियां, कहावतें हैं जो दलितों के प्रति घृणा भाव दर्शाते है। जैसे किसी भी व्यक्ति से बातचीत करने पर यह जुमला सुनने को मिल जाता है , 'क्या मुझे चोर-चमार समझ रखा है। ' ऐसे अनकों मुहावरे और कहावतें हैं जिनको इकट्ठा करने पर पूरे ग्रंथ की रचना की जा सकती है। एक कहावत है कि 'कोदो सावां अन्न नहीं , डोम चमार जन नहीं। ' यह कहावत दलितों की स्थिति बयान करती है।

भारतीय समाज-व्यवस्था की भेदभावपूर्ण क्रूर प्रणाली ने धार्मिक चोगा पहनकर और मर्यादा का आवरण ओढ़कर ब्राह्मणवाद का रूप धारण किया , जिसने धार्मिक , कर्मकांड, अंधविश्वास और जन्मना ऊँच नीच की भावना को वैधता प्रदान की। आज भी ये कुरीतियां विभिन्न नियमों, कानूनों के बावजूद अपनी भयानकता के साथ हमारे समाज में विद्यमान है।

**आधुनिक दलित विमर्श की उत्पत्ति भारत में**

भारत में शताब्दियों से अनेक परिवर्तन आये। पहले जब भारत में आर्यो का शासन था तब प्रजा धार्मिक , सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक रूप से समृद्ध थी लेकिन मुस्लिमों ने जब भारत पर चढ़ाई की तब भारत में राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिकऔर सामाजिक रूप से अंधकार फैल गया था। राजनैतिक पराधीनता ने भारतवासियों को दुर्बलता , दरिद्रता, हीन-भावना और अन्य विकारों से ग्रस्त कर रखा था। पाश्चात्य संस्कृति तथा सभ्यता के साथ हुआ यह साक्षात्कार भारतीय समाज के लिए एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना थी। कुछ सौ साल पहले मुगलों का आगमन हुआ था , पर वह लगभग आत्मसात हो चुका था। वे यहा लूटने आये थे , लेकिन वे लुटेरे से धीरे-धीरे शासक बन गये और बाद में यहीं के होकर रह गये।

इसी सन्दर्भ में भवानीलाल भारतीय का मत है कि-- " विदेशी शासन से उत्पन्न भाव ने भारत के विशाल हिन्दू समाज के धार्मिक आध्यात्मिक तथा नैतिक मूल्यों को अपूरणीय क्षति पहुचाई थी। सहस्राब्दियों पूर्व के वैदिक औपनिषदिक तथा रामायण एवं महाभारतकालीन समाज में लोगों की इहलोक एवं परलोक के प्रति जो स्वस्थ दृष्टि थी वह तो अतीत की वस्तु हो ही गई थी, मौर्य और गुप्तयुगीन समृद्धि तथा वैभव तत्कालीन लोगों की कलात्मक अभिरुचि , साहित्य, संगीत, काव्य तथा स्थापत्य के क्षेत्र की बढ़ती उपलब्धियां भी इतिहास की कहानिया बनकर रह गई। उस युग में बृहत्तर भारत का जैसा मानचित्र उभरकर आया और पूर्व के समुद्रपारीय देशों पर भारत की सांस्कृतिक विजय ने जैसी छाप छोड़ी वह सब अतीत की वस्तु बन गई थी। धर्म समाज तथा देश के सामान्य जनजीवन पर पराधीनता की काली घटाओं ने आपत्ति,, विपत्ति, शोषण और अभिशापों की जैसी उपल वृष्टि की, उससे लोगों के दुख और कष्ट बढ़े।"

इस समय लोग आर्थिक रूप से इतने पराधीन हो गये थे कि गरीब और गरीब होने लगे थे और किसान मजदूर बनने लगे थे। गृह उद्योग , कुटीर उद्योग, खेती आदि नष्ट हो गये थे। अंग्रेजों का जुल्म दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगा था। राज तो अंग्रेजों ने पहले ही ले लिया था बाद में उन लोगों ने व्यापार में भी अपनी मनमानी चलाई। परिणाम स्वरूप भारतीय जनता गरीब बनती गई और अंग्रेज और धनवान बनते गये। आर्थिक, राजनैतिक रूप से तो हम खत्म हो ही गये थे लेकिन धार्मिक रूप से भी हमारे धर्मगुरुओं ने भारतीय संस्कृति की जड़ को खोखला कर दिया था।

इसी पर अपना मन्तव्य प्रस्तुत करते हुए भवानीलाल जी लिखते हैं कि-- " धर्म के नाम पर थोथा , कर्मकाण्ड, नैतिकता के नाम पर मिथ्या , अंधविश्वासों का प्रचलन तथा सुसंगत एवं उदार सामाजिक विधान स्थान पर कठोर आवर्जनाओं एवं विवर्जनाओं से नियन्त्रित श्रृंखलाबद्ध मूल रूढ़ियों का अनुपालन यह उस युग का सामन्य चित्र था। सर्वत्र संकीर्णता अनुदाता तथा जड़ता व्याप्त थी। मध्यकाल की इस गतिहीन प्राचीनता पोषक तथा युगदृष्टि विरहित जीवन मीमांसा ने जिन सामाजिक बुराइयों को जन्म दिया, उनमें बाल-विवाह का प्रचलन स्त्रियों को पर्दे में रखना , जन्म से जाति के आधार पर समाज का शतधा सहस्रधा विघटन ऊँच-नीच की भावना पर आधारित स्पृश्यास्पृश्य का भाव तथा दलित एवं निम्न वर्ग पर अकल्पनीय अत्याचार आदि उल्लेखनीय है।"इसी सन्दर्भ मं वे आगे भी लिखते हैं कि--" उस युग में जो स्थिति हिन्दू धर्म की थी, समाज की दशा उससे किसी भी प्रकार बेहतर नहीं कही जा सकती थी , विगत शताब्दी का हिन्दू समाज सर्वथा जर्जरित और रोग ग्रस्त होकर मरणासन्न स्थिति तक पहँच चुका था। जातिभेद के भयंकर रूप , दलित एवं शोषित वर्ग की सोचनीय स्थिति तथा नारी जाति पर सीमातीत अत्याचारों ने इस समाज को सर्वथा मुमूर्ष बना दिया था। आर्यों का वर्णाश्रम व्यवस्था पर आधारित समाज विभिन्न आन्तरिक विग्रहों का शिकार होकर जीवन की अंतिम सासे ले रहा था। इस काल के ब्राहमण तेज से रहित, क्षत्रिय क्लीवता एवं दौर्बल्य से पीड़ित , वैश्य धनहीन एवं शूद्र स्वार्थों से पूरित थे। जब तथाकथित द्विजातियों की स्थिति ही सोचनीय रही हो तो शूद्रों के अधःपतन में शंका ही क्या थी ? हिन्दू समाज में अत्यधिक श्रद्धा एवं सत्कार की भाजन साधु-सन्यासी वर्ग भी अविद्या एवं अज्ञानग्रस्त होकर अहंकार में चूर भंग , गांजा, अफीम और मदिरा जैसे मादक द्रव्यों का सेवन करने के कारण सर्वविध पतन के गर्त में गिर चुका था। जिस समाज के अग्रगन्ता ब्राहमण और सन्यासी ही जब स्वकर्तव्य को विस्मृत कर पापाचरण में प्रवृत्त हो जाये ंतो अन्य लोगों की कथा ही क्या ? ऐसा लगता था कि मोहमयी मदिरा का पान कर समस्त समाज ही अज्ञानान्धकार में इतस्ततः अंधे की नाई भटक रहा है। जब उसके मार्गदर्शक एवं नेता कहलाने वाले व्यक्ति ही दिग्मूढ़ होकर पथभ्रष्ट हो चुके, तो अनुयायियों के लिए भी 'अंधनैव नीयमाना यथान्धाः' की उक्ति को चरितार्थ करते हुए सर्वनाश की ओर अग्रसर होने के अतिरिक्त और कोई उपाय शेष नहीं रहा था।"

"भारत के लोग यह जानते थे कि उनका पतन क्यों हो सकता है। साक्षरता विवेक की रचना में सहायिका हो सकती है किंतु निरक्षर भी विवेकशील हो सकता है और उसका विवेक अधिक प्रभावपूर्ण और प्रभावशाली हो सकता है, लोग साक्षर भले ही न हों पर सदा से विवेकी रहे हैं और मूल्यों का मर्म समझते हैं। केवल आर्थिक और काम जगत के मूल्य उनके नियामक नहीं रहे हैं अपितु वे इनका संचालन भी धर्म और मुक्ति की दृष्टि से करते हैं। पुरुषार्थ चतुष्टय का योग ही भारत की कर्मभूमि की पीठिका का आधार स्तंभ है। तब तक सिद्धि की परिकल्पना भारत की मनीषा नहीं कर सकती जब तक की इन चारों की यौगिक उत्पत्ति से जीवन का संचालन न हो। फूट , परस्पर द्वेष, घृणा, सत्ता का लोभ, ज्ञान, विज्ञान की कमी भारत के पराभव का कारण बनी थी और उन्होंने ऐसी प्रथाओं को जन्म दिया था जिनके कारण देश पराभूत हुआ था। इनके मर्म के अंतर तक भारत की मनीषा पहँुच चुकी थी और यह देश अपने इन मूल्यों की स्थापना के लिए व्याकुल था जिनके कारण यह मुक्त और विराट रहा है। सन् 1857 के विप्लव ने उन मूल्यों की पुनरुस्थापना के लिए राष्ट्रीय मंच की नींव रखी।

**राजनीतिक कारण**

डलहौजी की युद्ध के द्वारा लैप्स की नीति , वह एक कुशासन द्वारा अपने राज्य को बढ़ाने की उग्र नीति थी। उससे सर्वत्र लोगों में आतंक छा गया। मुगल बादशाहों व शाहजादों के साथ उसका बर्ताव उनको दिल्ली से हटाकर अवध भेजने का विचार , अवध के नबाब वज़ीर को सिंहासन से उतारना, नाना साहब की पेन्शन बंद करना, छोटी-मोटी रियासतों को खत्म कर देना आदि बातों के कारण देश में अंग्रेजों के विरुद्ध असंतोष फैल गया। मुगल व मराठे दोनों सोचते थे कि अंग्रेजों ने उनके

www.ignited.in

साम्राज्यों का विनाश किया है और दोनों ही अपना-अपना राज्य पुनः पाने के लिए लालायित थे।

**सामाजिक व आर्थिक कारण**

बहुत राज्यों के ब्रिटिश साम्राज्य में मिल जाने के कारण अनेको भारतीय अधिकारी अपनी जीविका से हाथ धो बैठे तथा बेकार हो गये यद्यपि वे चतुर और अनुभवी थे। इसके अतिरिक्त विजय करने के बाद जब अंग्रेजों ने भूमि का बन्दोबस्त बनाया तो जमीदारों के अधिकारों को रैयत के लिए छीन लिया गया। ईनाम कमीशन ने बम्बई में लगभग 20000 जागीरों का अपहरण कर लिया। बडे-बड़े राजा महाराजा और अमीर निर्धन होने लगे। अतएव अंग्रेजों के प्रति उनका वैमनस्य स्वाभाविक था। अनेकों राज्यों को जीतकर ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लेने के बाद भारतीय सेनाओं को भंग कर दिया गया जिससे अनेकों अनुभवी व महत्वाकांक्षी सैनिक बेकार हो गये।

**धार्मिक कारण**

हिन्दू व मुसलमान दोनों के दिलो में इस संदेह ने घर कर लिया कि अंग्रेज उनके प्राचीन रीति-रिवाजों को तोड़कर उनको ईसाई बनाना चाहते हैं। जिसको भारतीय अपने धर्म पर सीधा वार समझते थे। अंग्रेजो द्वारा कुछ नये कदम उठाये गये जैसे- ईसाई मत का प्रचार , 1834 के बाद अंग्रेजी शिक्षा का विशेष प्रचार , इसाई प्रचारकां के साथ सरकार की खास रियायतें , अंग्रेजों द्वारा प्राचीन रीति-रिवाजों जैसे बच्ची को दूध पीती करवाना , सती प्रथा , विधवा विवाह आदि के विरुद्ध चेष्टा , शैतानी रेलों व तारघरों का बनना तथा लोगों द्वारा धर्मपरिवर्तन करके ईसाई बनना ताकि उन्हें अपने पूर्वजों की सम्पत्ति पर अधिकार मिले- मुख्य कारण थे।

**सैनिक कारण**

गदर का सबसे महत्वपूर्ण कारण सैनिक कारण यह था कि भारतीय सेना अंग्रेजी सेना से अधिक बलवान एवं क्षमता वाली थी। गदर के पहले सेना में 13 वर्षों में चार बार विद्रोह हो चुका था। बंगाल की सेना में उच्चजाति के सैनिको की बहुतायत थी। साथ ही नियंत्रण में कमी थी जिसका कारण सेना का स्थानीय होना था। जब भारत से बाहर जाने के लिए भारत के सैनिक को विवश किया गया तो उच्च जाति हिन्दू जैसे ब्राह्मण और राजपूत के सैनिको ने सोचा कि वे लोग समुद्र पार ले जाकर उनका धर्म भ्रष्ट करना चाहते हैं। पंजाब को छोड़कर कहीं भी उचित अनुपात में सेना की व्यवस्था नहीं की गई थी। अंग्रेज सराकार ने एक नई राइफल निकाली थी , जिसमें कारतूस लगाने के पहले कारतूस को मुह से खोलना पड़ता था और उस कारतूस पर चर्बी चढ़ी हुई थी , कतिपय उदाहरणों में वह चर्बी गायों व सुअरों की थी। जो हिन्दू व मुसलमान दोनों के लिए धर्मभ्रष्ट था जिससे दोनों कुपित हुए।"

**उपसंहार**

प्रेमचंद की हर कहानी भारतीय समाज की किसी न किसी रूढ़िगत परंपरा का खंडन करती दिखाई देती है। मेरे शोधप्रबन्ध का विषय 'नवजागरण काल' पर आधारित है। नवजागरण काल में भी भारतीय समाज की कुरीतियों का खंडन-मंडन उस समय के समाज-सुधारकों ने किया था और प्रेमचंदजी ने अपनी कहानियों के माध्यम से उन समाज सुधारकों का साथ दे रहे थे। इसीलिए तो प्रेमचंद को 'कलम का सिपाही' कहा जाता है। प्रेमचंदजी गरमदल और नरमदल के मध्यस्थी थे। गरमदल यानी सुभाषचन्द्र बोस की विचारधारा पर चलने वाले लोग और नरमदल यानी कि गांधीजी की विचारधारा पर चलने वाले लोग। इन दोनों के आजादी प्राप्त करने के मार्ग अलग अलग थे। प्रेमचंद ने इन दोनों के बीच का मध्यस्थ रास्ता अपनी लेखनी के माध्यम से निकाला। हिन्दी कथा साहित्य में प्रेमचंदजी ने जो गौरव प्राप्त किया है ,दलित विमर्ष ने तथाकथित मुख्यधारा के साहित्य को कठघरे में ला खड़ा किया है और साहित्य के वास्तविक मर्म को समझाने का यथार्थवादी प्रयास साहित्य की सभी विधाओं के माध्यम से किया है। दलित का सम्बंध चेतना से हैं , दलित को दया और सहानुभूति से घृणा है। यह हीनता की ग्रंथी को तोडकर दलित अस्मिता की प्रखरता को स्थापित करने की ओर अग्रसर है। सदियों से जिसे साहित्य और समाज में हाशिए पर फेंक दिया गया था। जिसे शुद्व , हरिजन, अवर्ण, पंचम, अतिशूद्र आदि नामों से विहित करके दया का पात्र बना दिया गया था , वही आज प्रखर आत्मबोध के साथ इन सारी शब्दावलियों को ठुकराकर स्वयं 'दलित' के रूप में अपनी अस्मिता का बोध करा रहा है। प्रख्यात मराठी दलित साहित्यकार शरण कुमार लिंबाले के शब्दों में , 'दलित को 'दया' से घृणा है , उस दया और सहानुभूती नहीं 'अधिकार चाहिए।

**ग्रंथ सूची**

अमृत राय : प्रेमचंद की प्रासंगिकता ,हंस प्रकाशन 1985 इलाहाबाद

अमृत राय : कलम का सिपाहीहंस प्रकाशन 1981 इलाहाबाद

अम्बेडकर: सम्पूर्ण वाग्यंमयप्रकाशन विभाग 1993 नई दिल्ली।

आनंद: हिंदी साहित्य में दलित चेतना विद्या वितर , कानपुर, 1986

इन्द्र नाथ मदान: प्रेमचंद: एक विवेचन राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली 1989- प्रेमचंद चिंतन व कला सरस्वती प्रैस , इलाहाबाद- “गोदान” मूल्यांकन और मूल्यांकन नीलाभ प्रकाश, इलाहाबाद

ओम प्रकाश वाल्मीकि: दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्रराधा कृष्ण प्रकाशन,नई दिल्ली, 2001

कंवल भारती : दलित विमर्श की भूमिकाइतिहास बोध प्रकाशन,इलाहाबाद, 2002

जैनेन्द्र कुमार : प्रेमचंद: एक कृति व्यक्तित्व पूर्वोदय प्रकाशन नई दिल्ली- 1967

प्रेमचंद: मानसरोवरखंड आठ , हंस प्रकाशन इलाहाबाद, 1966

---

**Corresponding Author**

**Meenakshi***

Research Scholar, Sunrise University, Alwar, Rajasthan